

Research Article

भारतीय संस्कृति के बहुआयामी विकास में बौद्ध दर्शन की भूमिका: एक अंतर्संबंधात्मक विमर्श

उमेश चन्द्र¹, रामेश्वर पाण्डेय²

¹असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, अर्मापुर पी० जी० कालेज कानपुर नगर, उत्तर प्रदेश, भारत

²असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास विभाग, नेशनल पी० जी० कालेज बड़हलगंज, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश, भारत

DOI: <https://doi.org/10.24321/2456.0510.202512>

INFO

Corresponding Author:

रामेश्वर पाण्डेय, प्राचीन इतिहास विभाग, नेशनल पी० जी० कालेज बड़हलगंज, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश, भारत |

E-mail Id:

rameshwarnpg@gmail.com

Orcid Id:

<https://orcid.org/0009-0001-2969-6174>

How to cite this article:

उमेश चन्द्र, रामेश्वर पाण्डेय, भारतीय संस्कृति के बहुआयामी विकास में बौद्ध दर्शन की भूमिका: एक अंतर्संबंधात्मक विमर्श, Anu: a, Mul, Int, Jour, 2025; 10(3&4): 37-40.

Date of Submission: 2025-11-18

Date of Acceptance: 2025-12-20

ABSTRACT

प्रस्तुत शोध पत्र भारतीय संस्कृति के विविध आयामों—सामाजिक, दार्शनिक, साहित्यिक, कलात्मक एवं वैश्विक—के क्रमिक विकास में बौद्ध जीवन-दर्शन की अंतर्निहित भूमिका का एक आलोचनात्मक एवं अंतर्संबंधात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। ईसा पूर्व छठी शताब्दी में गंगा घाटी में उत्पन्न हुए बौद्ध आंदोलन ने तत्कालीन रूढ़िवादी सामाजिक संरचना, पुरोहितीय वर्चस्व और जटिल कर्मकांडों को तार्किक चुनौती दी। बौद्ध दर्शन ने केवल एक आध्यात्मिक विकल्प ही प्रस्तुत नहीं किया, बल्कि भारतीय मानस को “मध्यम मार्ग”, “अहिंसा” और “करुणा” जैसे व्यावहारिक सिद्धांतों से सिंचित कर एक नए युग का सूत्रपात किया। यह शोध इस तथ्य को रेखांकित करता है कि यद्यपि कालक्रम में भारत भूमि पर संगठित बौद्ध धर्म का संकुचन हुआ, तथापि इसके दार्शनिक और सांस्कृतिक मूल्य भारतीय अस्मिता के मूल आधारों में अपनी गहन पैठ बनाए रहे। इस शोध पत्र के परिणाम यह प्रतिपादित करते हैं कि आधुनिक भारतीय संस्कृति का बहुआयामी ढांचा बौद्ध दर्शन के ऐतिहासिक अवदानों के साथ अटूट रूप से अंतर्संबंधित है।

मुख्य शब्द: भारतीय संस्कृति; अहिंसा; बौद्ध धर्म; महात्मा बुद्ध; अष्टांगिक मार्ग।

परिचय

भारतीय इतिहास के विहंगम पटल पर ईसा पूर्व छठी शताब्दी का कालखंड एक अभूतपूर्व वैचारिक और बौद्धिक संक्रान्ति का युग माना जाता है। इस ऐतिहासिक दौर में, जहाँ एक ओर द्वितीय नगरीकरण के कारण नए आर्थिक संबंधों और व्यापारिक वर्गों का उदय हो रहा था, वहीं दूसरी ओर तत्कालीन समाज अत्यधिक जटिल याज्ञिक कर्मकांडों, पशुबलियों और जन्म आधारित कठोर वर्ण व्यवस्था के बोझ तले दबा हुआ था। इस सामाजिक-धार्मिक कुंठा और उथल-पुथल के संक्रमण काल में शाक्य कुल के राजकुमार सिद्धार्थ, जो बोधिसत्व की प्राप्ति के उपरांत महात्मा बुद्ध कहलाए, का प्रादुर्भाव हुआ। बुद्ध का आंदोलन महज़ एक नए पंथ की स्थापना नहीं था, बल्कि यह सदियों से चली आ रही अमानवीय सामाजिक विसंगतियों और रूढ़ियों के खिलाफ एक सशक्त, तार्किक और मानवीय विद्रोह था। महात्मा बुद्ध ने अपने युग की तात्कालिक समस्याओं का गहन पर्यवेक्षण किया और पारंपरिक दार्शनिकों की भाँति ईश्वर की सत्ता या आत्मा की अमरता जैसे गूढ़ और अनुत्पादक विषयों पर उलझने के बजाय, मानव जीवन के वास्तविक और व्यावहारिक दुखों के उन्मूलन को अपने चिंतन का केंद्र बिंदु बनाया।¹ उन्होंने एक ऐसे व्यावहारिक जीवन दर्शन को प्रतिपादित किया जो पूरी तरह से तर्क, अनुभव और मानवीय संवेदनाओं पर आधारित था। बौद्ध दर्शन की सबसे बड़ी विशेषता इसका लचीलापन और वैज्ञानिक दृष्टिकोण था, जिसने तत्कालीन समाज के शोषितों, वंचितों और दासों से लेकर संभ्रांत शासक वर्ग तक को समान रूप से प्रभावित किया क्योंकि इसने मनुष्य की गरिमा को जन्म से न जोड़कर उसके सदाचार और कर्म से जोड़ा। सांस्कृतिक दृष्टिकोण से, बौद्ध दर्शन ने संकीर्ण क्षेत्रीय सीमाओं को तोड़कर भारतीय मेधा को एक वैश्विक क्षितिज प्रदान किया, जिसने आगे चलकर भारत को ज्ञान और शांति के एक वैश्विक केंद्र के रूप में प्रतिस्थापित किया।²

सामाजिक पुनर्गठन एवं समतामूलक अंतर्संबंध

बौद्ध दर्शन का सबसे क्रांतिकारी और प्रत्यक्ष प्रभाव भारतीय सामाजिक संरचना के बहुआयामी ताने-बाने पर पड़ा। तत्कालीन समाज में जन्म आधारित वर्ण व्यवस्था ने मनुष्यों के बीच भेदभाव की गहरी खाइयाँ खोद दी थीं, जिससे मानवीय गरिमा का हास हो रहा था। बुद्ध ने इस जन्मजात श्रेष्ठता के सिद्धांत पर तीखा प्रहार करते हुए स्थापित किया कि कोई भी व्यक्ति अपने कुल से नहीं बल्कि अपने नैतिक आचरण और कर्मों से महान बनता है।¹ उन्होंने अपने भिक्षु संघ के द्वार समाज के सबसे निचले पायदान पर खड़े अंत्यजों, दासों और वंचितों के लिए समान रूप से खोल दिए। इसके साथ ही, महिलाओं को भिक्षुणी संघ में प्रवेश की अनुमति देकर उन्हें आध्यात्मिक और सामाजिक स्वतंत्रता की मुख्यधारा से जोड़ा गया, जिससे तत्कालीन पितृसत्तात्मक समाज के दृष्टिकोण में एक सकारात्मक बदलाव आया। इस समतावादी वैचारिक अंतर्संबंध ने समाज में व्याप्त कुंठा को दूर कर एक न्यायप्रिय और मानवीय समाज की आधारशिला रखी, जो आज के आधुनिक लोकतांत्रिक मूल्यों का भी मूल ध्येय है।

दार्शनिक चेतना और व्यावहारिक “मध्यम मार्ग”

दार्शनिक और वैचारिक स्तर पर बौद्ध धर्म ने अतिवादी सिद्धांतों का परित्याग कर “मज्झिम पटिपदा” अर्थात् मध्यम मार्ग का प्रतिपादन किया, जो भारतीय दर्शन की एक महान उपलब्धि है।³ बुद्ध ने जहाँ एक ओर घोर भौतिकवादी विलासिता को नकारा, वहीं दूसरी ओर शरीर को कष्ट देने वाली अत्यधिक कठोर तपस्या को भी अनुत्पादक माना। उन्होंने मानव जीवन के दुखों को समझने के लिए “चार आर्य सत्यों” की घोषणा की और उनके व्यावहारिक निवारण के रूप में “अष्टांगिक मार्ग” (सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाक, सम्यक कर्मांत, सम्यक आजीव, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति और सम्यक समाधि) का खाका प्रस्तुत किया।³ यह दर्शन कोरी कल्पनावश परलोक सुधारने के बजाय इसी लोक में नैतिक, अनुशासित और विवेकपूर्ण जीवन जीने की प्रेरणा देता है। इसके अतिरिक्त, बौद्ध दर्शन ने “अहिंसा” और “करुणा” (करुणारूपी मैत्री) को केवल व्यक्तिगत धार्मिक आचरण तक सीमित

न रखकर एक सामाजिक कर्तव्य और सामूहिक जीवन-मूल्य के रूप में स्थापित किया, जिसने भारतीय मानस को जीवमात्र के प्रति संवेदनशील बना दिया।⁴

लोकभाषा का लोकतंत्रीकरण और साहित्यिक समृद्धि

सांस्कृतिक विकास की दृष्टि से बौद्ध दर्शन का एक अविस्मरणीय अवदान ज्ञान और भाषा के लोकतंत्रीकरण में रहा है। उस युग में ज्ञान, दर्शन और धर्म की भाषा मुख्य रूप से संस्कृत थी, जो समाज के एक छोटे और विशिष्ट कुलीन वर्ग तक ही सीमित थी। महात्मा बुद्ध ने अपनी करुणा और दूरदर्शिता के कारण अपने उपदेशों और विमर्श के लिए तत्कालीन जनसाधारण की लोकभाषा “पाली” और “प्राकृत” को माध्यम बनाया। इस क्रांतिकारी कदम के कारण समाज का आम वर्ग भी दर्शन की गंभीर धाराओं से सीधे जुड़ने में सफल हो सका। इस भाषाई स्वतंत्रता के परिणामस्वरूप एक अत्यंत समृद्ध और विशाल साहित्य का सृजन हुआ। “त्रिपिटक” (सुत्त, विनय और अभिधम्म पिटक), “मिलिंदपन्हो” और महाकवि अश्वघोष द्वारा रचित “बुद्धचरित” जैसी कालजयी कृतियों ने भारतीय वास्तुकला और साहित्य को वैश्विक स्तर पर गौरवमयी बनाया।⁷ विशेष रूप से, “जातक कथाओं” के माध्यम से दी गई नैतिक और व्यावहारिक शिक्षाओं ने भारतीय लोककथाओं और नीतिशास्त्र की लोक-परंपरा को सदा के लिए समृद्ध कर दिया।⁶

कला, मूर्तिकला और स्थापत्य का स्वर्णिम अभिसरण

भारतीय कला और स्थापत्य कला के इतिहास का कोई भी विमर्श बौद्ध कला के संदर्भ के बिना अधूरा और एकांगी ही रहेगा। बौद्ध भिक्षुओं के वर्षावास, ध्यान और प्रार्थना के लिए निर्मित किए गए “चैत्य” और “विहार” भारतीय शैलकृत गुफा वास्तुकला के बेजोड़ उदाहरण बने।⁵ सांची, भरहुत और अमरावती के स्तूपों की वेदिकाओं पर उकेरी गई सूक्ष्म नक्काशी तत्कालीन समाज, लोकजीवन, प्रकृति और धार्मिक चेतना के जीवंत अंतर्संबंधों को प्रदर्शित करती है।⁷ इसके साथ ही, अजंता और एलोरा की गुफाओं की भित्तियों पर की गई चित्रकला (फ्रेस्को पेंटिंग) न केवल भारतीय कला की पराकाष्ठा है, बल्कि वह वैश्विक कला जगत की एक अमूल्य धरोहर भी है।⁷ मूर्तिकला के क्षेत्र में “गांधार” और “मथुरा” जैसी महान कला शैलियों का उद्भव और विकास मुख्य रूप से बुद्ध की शांत और करुणामयी प्रतिमाओं के निर्माण के साथ ही फला-फूला, जिसने भारतीय सौंदर्यशास्त्र को एक सर्वथा नया आयाम और वैश्विक पहचान प्रदान की।

उच्च शिक्षा प्रणालियों का संस्थागत संस्थापन

बौद्ध दर्शन ने शिक्षा के क्षेत्र में एक अभूतपूर्व संस्थागत और गुणात्मक परिवर्तन का सूत्रपात किया। बौद्ध विहार केवल एकांत साधना और धार्मिक विमर्श के केंद्र नहीं रहे, बल्कि वे धीरे-धीरे विशाल आवासीय और अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों के रूप में रूपांतरित हो गए। प्राचीन भारत के महान नालंदा, तक्षशिला, विक्रमशिला, वल्लभी और ओदंतपुरी जैसे विश्वविद्यालय इसी बौद्धिक चेतना और संघ-प्रणाली की देन थे।⁸ इन वैश्विक केंद्रों में केवल धार्मिक या दार्शनिक ग्रंथ ही नहीं पढ़ाए जाते थे, बल्कि खगोल विज्ञान, तर्कशास्त्र, चिकित्सा, धातु विज्ञान, राजनीति और धर्मनिरपेक्ष विषयों की उच्च स्तरीय वैज्ञानिक शिक्षा दी जाती थी। चीन, जापान, कोरिया, तिब्बत और मध्य एशिया से ह्वेनसांग, फाह्यान और इत्सिंग जैसे सैकड़ों विदेशी विद्वान इन विश्वविद्यालयों में ज्ञानार्जन के लिए आते थे, जिसने भारत को वैश्विक स्तर पर ज्ञान का एक अप्रतिम केंद्र और “विश्व गुरु” के रूप में स्थापित किया।

राजनीतिक दर्शन और वैश्विक सांस्कृतिक कूटनीति

राजनीतिक चिंतन और शासकिय दृष्टिकोण के धरातल पर बौद्ध दर्शन ने “लोककल्याणकारी राज्य” की आधुनिक अवधारणा को बहुत पहले ही जन्म दे दिया था। सम्राट अशोक, कनिष्क, मिनांडर और राजा हर्षवर्धन जैसे महान ऐतिहासिक शासकों ने बौद्ध दर्शन के अहिंसा और जन-कल्याण के सिद्धांतों से प्रभावित होकर साम्राज्यवादी सैन्य विजय (युद्ध घोष) की नीति को सदैव के लिए

त्याग दिया और “धम्म विजय” (सांस्कृतिक व नैतिक विजय) का मार्ग चुना।¹⁷ इसके अंतर्गत राज्य सत्ता का मुख्य ध्येय प्रजा के केवल भौतिक उत्थान तक सीमित न रहकर उनके नैतिक और चारित्रिक विकास को सुनिश्चित करना माना गया, जिसके परिणामस्वरूप चिकित्सालयों, सरायों, सड़कों, कुओं और वृक्षारोपण जैसे जनकल्याणकारी कार्यों को राज्य की प्राथमिकता बनाया गया। इसी शांतिवादी मार्ग का अनुसरण करते हुए भारत ने कभी किसी अन्य देश पर सैन्य आक्रमण नहीं किया, बल्कि बौद्ध भिक्षुओं को सांस्कृतिक दूत के रूप में भेजकर पूरे एशिया महाद्वीप के देशों के साथ एक अटूट, सौहार्दपूर्ण और दीर्घकालिक वैश्विक सांस्कृतिक संबंध स्थापित किया।

निष्कर्ष

उपर्युक्त समग्र और बहुआयामी विवेचन के आधार पर यह अकादमिक निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि बौद्ध दर्शन भारतीय संस्कृति की आत्मा और उसकी अस्मिता में रची-बसी एक अमूल्य और अविभाज्य विरासत है। भले ही एक विशिष्ट कालखंड के बाद भारत में बौद्ध धर्म के प्रत्यक्ष अनुयायियों की संख्यात्मक कमी दर्ज की गई, परंतु इसके विचार और नैतिक मूल्य भारतीय जीवन पद्धति और लोकाचार से कभी ओझल नहीं हुए। आधुनिक स्वतंत्र भारत ने अपने राष्ट्रीय प्रतीकों का चयन करते समय सारनाथ के अशोक स्तंभ के “सिंह चतुर्मुख” को राजचिह्न के रूप में और राष्ट्रीय ध्वज के केंद्र में “अशोक चक्र” (धम्म चक्र) को स्थान देकर बुद्ध के सिद्धांतों के प्रति अपनी अटूट कृतज्ञता और प्रतिबद्धता व्यक्त की है। हमारे आधुनिक संविधान में समाहित स्वतंत्रता, समता, बंधुत्व और सामाजिक न्याय के मूल्य कहीं न कहीं बुद्ध के करुणा, प्रज्ञा और समता के दर्शन से ही अनुप्राणित हैं। अतः, भारतीय संस्कृति के बहुआयामी विकास में बौद्ध दर्शन का योगदान केवल अतीत के गौरवमयी पन्नों की विषय-वस्तु नहीं है, बल्कि यह वर्तमान और भविष्य के एक सहिष्णु, समावेशी और प्रगतिशील भारतीय समाज के निर्माण की एक निरंतर मार्गदर्शक चेतना है।

संदर्भ सूची

1. सांकृत्यायन, राहुल (1948), “बौद्ध दर्शन”, किताब महल, इलाहाबाद।
2. सांकृत्यायन, राहुल (1943), “दर्शन-दिग्दर्शन”, किताब महल, इलाहाबाद।
3. जगताप, डॉ. संगीता (2018), “बौद्ध दर्शन”, KAAV International Journal of Economics, Commerce & Business Management, 5(1), 609-616.
4. एम्मानुएल, एस एम (2018), “बुद्धिस्ट फ़िलॉसफ़ि: ए कम्पैरेटिव अप्रोच”, John Wiley & Sons, Inc., USA.
5. गोयल, एस आर (1987) “ए हिस्टरी ओफ़ इंडियन बुद्धिज़्म” कुसुमांजलि प्रकाशन, मेरठ, भारत।
6. सरवादके, डबल्यू के (2015) “आ स्टडी ऑफ़ हिस्टरी ऑफ़ बुद्धिज़्म अँड इट्स कंट्रीब्यूशन टू इंडियन कल्चर”, Journal of International Buddhist Studies, 6(1), 35-44.
7. अग्रवाल सुधांशु, पाण्डेय रामेश्वर, नायक पूजा, मिश्रा अजय कुमार, राज खुशबू, त्रिपाठी त्रिपुरेश कुमार, शुक्ला सुधीर कुमार (2023) “इमर्जिंग ट्रेंड्स इन साइंस, सोशल साइंस एंड इंजीनियरिंग”, अध्याय-२ कंट्रीब्यूशन ऑफ़ बुद्धिस्म टू इंडियन कल्चर, 23-32, अस्तित्व प्रकाशन, छत्तीसगढ़।
8. अग्रवाल सुधांशु, पाण्डेय रामेश्वर, शाहिदा ए टी, वैशाली, सिंह सुहासिनी, सिंह गरिमा, चौबे रामसहाय (2023) “इन्ट्रोवेटिव रिसर्च इन आर्ट्स साइंस एंड इंजीनियरिंग अध्याय-4 ए कम्पैरेटिव स्टडी ऑफ़ बुद्धिस्म एंड जैनियम, 85-89, अस्तित्व प्रकाशन, छत्तीसगढ़।